क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?

- परमात्मप्रकाश भारिल्ल

विज्ञान नहीं था तो क्या जीवन ना था
याद करो ना तुम तब की गौरव गाथा
पौराणिक पुरुषों ने जब झंडे गाड़े थे
तब ये आज का विज्ञान कहाँ था

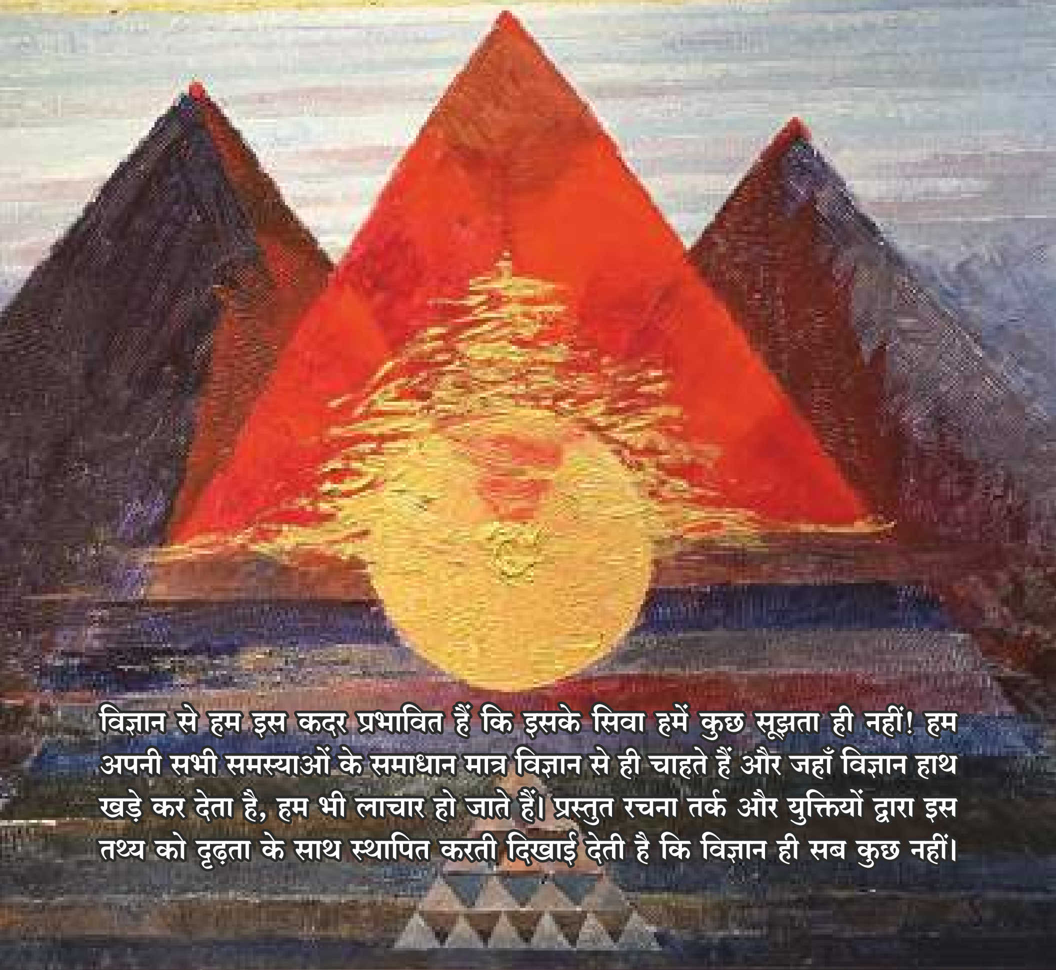

विज्ञान से हम इस कदर प्रभावित हैं कि इसके सिवा हमें कुछ सूझता ही नहीं! हम अपनी सभी समस्याओं के समाधान मात्र विज्ञान से ही चाहते हैं और जहाँ विज्ञान हाथ खड़े कर देता है, हम भी लाचार हो जाते हैं। प्रस्तुत रचना तर्क और युक्तियों द्वारा इस तथ्य को दृढ़ता के साथ स्थापित करती दिखाई देती है कि विज्ञान ही सब कुछ नहीं।

लेखक की अन्य कृति अन्तर्द्वन्द में व्यक्त कुछ महत्त्वपूर्ण विचार

❖ हमारा जीवन मात्र एक अनगढ़े पत्थर की तरह वेडोल न रह जाए, बल्कि एक आदर्श शिल्प बन सके – इसके लिए आवश्यकता है एक अत्यन्त ही कुशल शिल्पी की, और अपने स्वयं के लिए वह 'शिल्पी' कोई अन्य नहीं हो सकता; क्योंकि शिल्प में जो कुछ भी अभिव्यक्त होता है, वह शिल्पी का अपना दृष्टिकोण होता है, उसकी अपनी परिकल्पना होती है। हमें अपने- आपको जिस रूप में ढालना है वह किसी अन्य की परिकल्पना नहीं, वरन हमारा अपना स्वप्न है, हमारा अपना स्वप्न होना चाहिए और इसलिए हमें अपना शिल्पी स्वयं ही बनना होगा।

– अंतर्द्वन्द, पृष्ठ- (x)

❖ **यदि हम किसी अन्य के द्वारा निर्मित किसी भी कृति को पसन्द नहीं करते तो फिर भला हम अपने-आपको गढ़े जाने के लिए किसके हवाले कर दें? इसलिए यदि हम अपने जीवन को अपनी स्वयं की परिकल्पना के अनुरूप एक आदर्श शिल्प बनाना चाहते हैं तो हमें अपना शिल्पी स्वयं ही बनना होगा।** **– अंतर्द्वन्द, पृष्ठ- (xi)**

❖ अपने विचारों के अनुरूप अपने जीवन को ढालना कोई एक दिन का काम नहीं है, वरन यह एक सतत प्रक्रिया है। – अंतर्द्वन्द, पृष्ठ-(xii)

❖ **जब विचार ही आकार नहीं ले पाएंगे तो जीवन कैसे आकार लेगा ?**

– अंतर्द्वन्द, पृष्ठ-(xii)

❖ कौन कहता है कि मेरे पास कुछ नहीं अपने साथ ले जाने के लिए? हाँ ! ले जाने लायक कुछ नहीं, पर ले जाने के लिए तो है न? जीवन भर किये गये पापों का बोझ। – अंतर्द्वन्द, पृष्ठ-5

❖ **जिस पैसे के लिए हम अपना सारा जीवन झोंक डालते हैं, क्या वह सम्पूर्ण पैसा देकर भी हम पुनः जीवन का एक क्षण भी खरीद सकते हैं? नहीं! तब हम अपना यह जीवन धनोपार्जन में कैसे झोंक सकते हैं ?** **– अंतर्द्वन्द, पृष्ठ- 18**

❖ जीवन तो जीना ही था, यदि विचारपूर्वक जिया होता तो यही जीवन, जीवन-मरण का अन्त करनेवाला साबित होता। – अंतर्द्वन्द, पृष्ठ-25

❖ **कैसी विडंबना है कि जो जीवन इतना अनिश्चित है; उसके बारे में मैं कितना आश्वस्त हूँ व जो मृत्यु इतनी निश्चित है; उसकी मुझे कोई परवाह ही नहीं।**

– अंतर्द्वन्द, पृष्ठ-33

क्या विज्ञान
धर्म की कसौटी हो सकता है?

विज्ञान से हम इस कदर प्रभावित हैं कि इसके सिवा हमें कुछ सूझता ही नहीं! हम अपनी सभी समस्याओं के समाधान मात्र विज्ञान से ही चाहते हैं और जहाँ विज्ञान हाथ खड़े कर देता है, हम भी लाचार हो जाते हैं। प्रस्तुत रचना तर्क और युक्तियों द्वारा इस तथ्य को दृढ़ता के साथ स्थापित करती दिखाई देती है कि विज्ञान ही सब कुछ नहीं।

लेखक

परमात्मप्रकाश भारिल्ल

E-mail : parmatm@gmail.com

Mob. : 9057713567

प्रस्तावना

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रकाशक :

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

ए–4, बापूनगर, जयपुर – 302015

फोन : (0141) 2705581, 2707458

E-mail : ptstjaipur67@gmail.com

क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?	**:**	**परमात्मप्रकाश भारिल्ल**
प्रथम सात संस्करण (30 नवम्बर, 2008 ई. से अद्यतन)	:	**11 हजार प्रतियाँ**
अष्टम् संस्करण (14 जुलाई, 2024) अष्टाह्निका महापर्व	:	**5 हजार प्रतियाँ**
कुल	**:**	**16 हजार प्रतियाँ**

विषय–सूची

1. क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है? 1
2. आधुनिक विज्ञान की दासता से मुक्त आत्मार्थियों के लिए सम्यक दृष्टिकोण और विधि 21

मूल्य : **6 रुपये**

प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

1. श्री महेश जे. पारेख, मुम्बई	3100.00
2. श्रीमती अंकिता जैन, दिल्ली	1000.00
3. श्री हर्षवर्धन कोठारी, कोलकाता	1000.00
4. श्री वीरेन्द्रकुमार जैन, मुम्बई	1000.00
5. श्री महेश नरसगोंडा पाटील, हेरले	500.00
6. श्री अभिनन्दन महेश पाटील, हेरले	500.00
7. सौ. प्रतिभा संजय चोगुले, हेरले	500.00
कुल राशि –	**7600.00**

मुद्रक :
देशना एन्टरप्राइजेज
जयपुर

प्रकाशकीय

(सप्तम् संस्करण)

आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कृति के आठ हजार प्रतियों के दो संस्करण दस माह में ही समाप्त हो गये। अत: अब यह तीन हजार प्रतियों का तृतीय संस्करण आपके हाथों में है।

प्रकाशन से पूर्व जब यह कृति मेरे हाथ लगी तो मैंने इसके एक-दो पृष्ठ पलट कर देखे और मैं इसे पूरी पढ़ गया। यह पाठकों को भावनाओं में बांधे रखने में समर्थ है और मुझे विश्वास है कि जो लोग धर्मक्षेत्र से दूर हैं, उन पाठकों को त्रैकालिक परमसत्य धर्म को जानने के लिए प्रेरित करेगी।

पुराने विषय को नये रूप में प्रस्तुत करनेवाली यह कृति समाधिमरण की प्रेरक कृति है। संसारावस्था में मरण तो सुनिश्चित ही है, यदि मृत्यु का वास्तविक स्वरूप हमारी समझ में आ जाय तो हम समताभावपूर्वक देह त्यागने के लिए स्वयं को तैयार कर सकते हैं।

आज का समाज धर्म को विज्ञान की कसौटी पर कसने के आग्रह से त्रस्त है और धर्म और विज्ञान संबंधी आलेख भी हमें तत्संबंधित हीन भावना से मुक्त करनेवाला है।

इस कृति की जो प्रति मुझे पढ़ने को मिली थी, उसमें लेखक का नाम नहीं था। कृति की उपादेयता प्रतीत होने से मुझे लेखक का नाम जानने की तीव्र जिज्ञासा हुई और मैंने डॉ. भारिल्ल से कहा कि यह कृति आपकी तो है नहीं; क्योंकि मैं आपकी भाषा और प्रतिपादन शैली से भलीभांति परिचित हूँ।

तब डॉ. भारिल्ल ने बताया कि यह निबंध चि. परमात्मप्रकाश ने लिखे हैं और इन्हें डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल चैरिटेबल ट्रस्ट छपा रहा है।।

तब मैंने तत्काल कहा कि इसे अपन पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट से ही क्यों न छपाये? मुझे प्रसन्नता है कि उन्होंने सहजभाव से स्वीकृति प्रदान कर दी। हमारे अनुरोध पर उन्होंने छोटी सी प्रस्तावना भी लिख दी है। तदर्थ हम लेखक के साथ-साथ उनके भी आभारी हैं।

प्रस्तुति कृति को आकर्षक कलेवर एवं सुन्दर मुद्रण व्यवस्था के लिए श्री अखिल बंसल को भी धन्यवाद देते हैं। **– ब्र. यशपाल जैन**

प्रकाशनमंत्री : पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, जयपुर

प्रकाशकीय

(अष्टम् संस्करण)

पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल द्वारा लिखित ''क्या विज्ञान : धर्म की कसौटी हो सकता है'' नामक कृति का लोकार्पण करते हुए पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव कर रहा है।

यद्यपि यह निबंध पूर्व में भी लेखक की अन्य कृति ''क्या मृत्यु अभिशाप है'' के साथ अनेकों बार प्रकाशित हो चुका है, किन्तु अब एक स्वतंत्र कृति के रूप में पाठकों के अध्ययन हेतु प्रस्तुत है।

आज का यह मानव समाज इस आधुनिक विज्ञान से इस कदर अभीभूत है कि इसे विज्ञान के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं है। अपने स्वयं के हित-अहित का विचार न करते हुए यह प्रत्येक विषय में अपने आप को विज्ञान के हवाले कर देने के लिए तत्पर रहता है।

इस कृति के माध्यम से **लेखक तर्क और युक्तियों के आधार पर इस तथ्य को रेखांकित करने में सफल हुए हैं कि अभी अपनी बाल्यावस्था में स्थित इस आधुनिक विज्ञान को सम्पूर्णता को प्राप्त धार्मिक और आध्यात्मिक विषयों पर टिप्पणी करने का कोई अधिकार नहीं है।**

लेखक का कहना है कि आधुनिक विज्ञान की शोध-खोज का विषय मात्र स्थूल और निर्जीव पुद्गल द्रव्य है जबकि धर्म का कार्यक्षेत्र इस पुद्गल द्रव्य के अतिरिक्त अरूपी एवं चेतन आत्म द्रव्य भी है, इनमें आत्मा ही प्रधान और प्रयोजनभूत है। **जब आत्मा और परमात्मा विज्ञान की शोध-खोज के विषय ही नहीं हैं तब इस विज्ञान को उनसे सम्बन्धित धार्मिक मान्यताओं को प्रमाणित करने या नकारने का क्या अधिकार है?**

यह हमारी ही नादानी है कि हम इस आधुनिक विज्ञान से ऐसी अनुचित अपेक्षा करते हैं।

इस उत्कृष्ट रचना के लिए प्रस्तुत कृति के लेखक, आकर्षक और सुरुचिपूर्ण कवर पेज पेटिंग के लिए कलाकार श्री योगेन्द्र सेठी, इंदौर; टंकण कार्य हेतु श्री कमल शर्मा एवं सम्पूर्ण मुद्रण प्रबंधन हेतु डॉ. अखिल बंसल भी धन्यवाद के पात्र हैं।

– विपिन जैन 'शास्त्री' मुम्बई

प्रकाशन मंत्री

दिनांक : 5 जुलाई, 2024

प्रस्तावना

'क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?' इस निबंध में यह समझाने का सार्थक प्रयास किया गया है कि धर्म आत्मा की शोध-खोज का प्राचीनतम व्यवस्थित विज्ञान है, वीतराग-विज्ञान है; क्योंकि वह वीतरागता की प्राप्ति कैसे होती है इस पर व्यवस्थित प्रकाश डालता है। स्वयं में परिपूर्ण उक्त विज्ञान को इस आधुनिक भौतिकविज्ञान की कसौटी पर कसना; जो अभी स्वयं अपूर्ण है और प्रतिदिन अपनी ही बात को गलत सिद्ध करता प्रतीत होता है; कहाँ तक न्यायसंगत है?

जिस विज्ञान ने आज इतनी विनाशक सामग्री तैयार कर दी है कि यदि उसके शतांश का भी उपयोग हो जावे, प्रयोग हो जावे तो सम्पूर्ण विश्व नेस्तनाबूद हो सकता है; उस विज्ञान को तो धर्म के अंकुश की आवश्यकता है; अन्यथा वह विश्व को विनाश की विकराल ज्वाला में धकेल सकता है।

जिन लोगों ने ऐसे शस्त्रों का निर्माण किया है; वे लोग तो यही चाहेंगे कि उनके बनाये शस्त्रों का उपयोग हो; क्योंकि उन्हें उसी से प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। सत्ता के मद में मदोन्मत्त सत्ताधारी लोगों के पास भी इतना विवेक कहाँ है कि वे इस विश्व को विनाश से बचा सकें। अहिंसा धर्म और अहिंसक धर्मात्मा ही इस काम को बखूबी कर सकते हैं। अतः इस बात की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इस भौतिक-विज्ञान पर वीतराग-विज्ञान का अंकुश आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

यह आलेख गंभीर विचार मंथन के उपरान्त लिखे गये हैं; संबंधित विषय में किये गये गंभीर चिन्तन को सतर्क प्रस्तुत करता है।

अतः पूरी गंभीरता के साथ मूलतः पठनीय है।

25 नवम्बर, 2008 ई. **डॉ. हुकमचन्दभारिल्ल, जयपुर**

अपनी बात

विज्ञान द्वारा प्रदत्त भौतिक सुख-सुविधाओं से अभिभूत हम लोग विज्ञान से इस कदर प्रभावित हैं कि हम स्वविवेक को तिलांजलि देकर वीतरागी-सर्वज्ञ देव प्रणीत धर्म के सिद्धांतों की सत्यता प्रमाणित करने के लिए मात्र भौतिक विज्ञान पर आश्रित हो जाना चाहते हैं। इस तथ्य से बेखबर कि धर्म और अध्यात्म के विषय आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसंधान के विषय ही नहीं हैं। इन विषयों के बारे में विज्ञान की कोई सुनिश्चित अवधारणा ही नहीं है। इन विषयों के बारे में विज्ञान प्रश्न कितने ही खड़े कर दे पर उसके पास उन प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं।

ऐसी स्थिति में हम सभी का यह प्रश्न बेमानी हो जाता है कि **'क्या विज्ञान हमारे धार्मिक और आध्यात्मिक विश्वासों की पुष्टि करता है?'**

एक बात और! अपना यह केस विज्ञान की अदालत को सुपुर्द करने से पहले एक बार हम विज्ञान से तो पूँछ लें कि क्या वे ऐसा करने के लिए सहमत हैं?

विज्ञान तो इस विषय में कभी कोई समाधान प्रस्तुत करेगा नहीं, तो क्या विज्ञान द्वारा पुष्टि के अभाव में हम धर्म को ही त्याग देंगे? ऐसा करके क्या हम अपना घोर अहित नहीं कर लेंगे?

क्या हम अपने हित-अहित के अन्य विषयों का निर्णय भी ऐसे ही अपने किसी अनपढ़-अज्ञानी और स्वार्थी पडौसी पर छोड़ देते हैं?

क्या यह हमारा घोर अविवेक नहीं?

मेरा दावा है कि प्रस्तुत कृति के अध्ययन के बाद आपको सदा परेशान रखने वाले अपने इस ज्वलंत प्रश्न का समाधान मिल जाएगा

और आप निर्द्वंद होकर अपने कल्याण के मार्ग में लग सकेंगे।

धर्म का उद्देश्य है आत्मोत्थान। और आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में धर्म द्वारा प्रतिपादित तथ्यों के प्रति निःशंक और निर्द्वंद आस्था के बिना धर्म और अध्यात्म भी आत्म कल्याण में कार्यकारी नहीं होता है।

संसार से मुक्त होने के लिए न तो आधुनिक विज्ञान के द्वारा धार्मिक मान्यताओं का सत्यापन काम आएगा और न ही केवली भगवान के द्वारा। मुक्ति पाने के लिए तो भगवान आत्मा का स्वरूप स्वयं अपने अनुभव से ही प्रमाणित करना होगा।

मैं समझ नहीं पाता हूँ कि क्यों हम अपनी अनादिकाल से चली आ रही धर्म के ज्ञान की विरासत को खो देना चाहते हैं? क्यों हम इस समृद्ध विरासत को तिलांजलि देकर अपने-आपको उस विज्ञान के हवाले कर देना चाहते हैं जो स्वयं अभी अपनी बाल्यावस्था में है। क्या यह घोर अविवेक पूर्ण नहीं है?

क्या ऐसा करके हम अपने मानव होने के नाते प्राप्त ज्ञान की विरासत के अधिकारी होने के अपने विशेषाधिकार को तिलांजलि देकर, पशुओं जैसी विरासत से वंचितों की स्थिति में नहीं पहुंच जाएंगे?

आत्मा-परमात्मा के स्वरूप और धार्मिक प्रतिपादन के विषय में अपने-आपको विज्ञान के हवाले कर देने के मायने हैं जीवन का reset button दबा देना। ज्ञान की अपनी समृद्ध विरासत को मिट्टी में मिलाकर शून्य पर आ खड़ा होना। आदिकाल से अपने पूर्वजों द्वारा की गई शोध-खोज के निष्कर्षों को तिलांजलि देकर एक अबोध बालक की भांति हो जाना। जीवन के इस पड़ाव पर आकर एक बार फिर शून्य से शुरुआत करना।

अरे! पुद्गल की शोध-खोज में डूबे रहने वाले इन वैज्ञानिकों को आत्मा-परमात्मा की क्या खबर?

धर्म परमार्थ है और विज्ञान स्वार्थ मूलक, इनके बीच कोई सामंजस्य ही नहीं है।

धर्म और धर्म का मार्ग जिस आत्मा के कल्याण के लिए है, विज्ञान की नजरों में उस आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है।

धर्म का कार्यक्षेत्र और चिंतन का विषय मात्र इस मानव का यह वर्तमान जीवन नहीं वरन अनादि-अनंत भगवान आत्मा है जबकि विज्ञान की दृष्टि में आत्मा का अस्तित्व ही संदिग्ध है।

आधुनिक भौतिक विज्ञान संसार का विज्ञान है और धर्म (वीतराग विज्ञान) है मुक्ति का विज्ञान।

आधुनिक विज्ञान का लक्ष्य है संसार का विकास और दूसरी ओर धर्म का लक्ष्य है आत्मा के (अपने) संसार का विनाश।

आत्मार्थियों के लिए यह भौतिक विज्ञान वैसा ही हेय है जैसा संसार।

प्रस्तुत हैं वे तर्क और युक्तियाँ जो निसंदेह रूप से इस मान्यता को स्थापित कर देंगीं कि अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए धर्म और अध्यात्म को किसी विज्ञान की अदालत में जाने की आवश्यकता नहीं है। हाँ! यदि विज्ञान चाहे तो अपने निष्कर्षों की पुष्टि के लिए धर्म की शरण में आये।

मेरा दावा है कि प्रस्तुत कृति के अध्ययन के बाद आप विज्ञान के प्रति अपनी मानसिक दासता से मुक्त हो जायेंगे।

– परमात्मप्रकाश भारिल्ल

क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?

क्या धार्मिक–मान्यताओं को आधुनिक–विज्ञान मान्यता देता है, क्या यह विज्ञान उन्हें कन्फर्म करता है; क्या उन्हें प्रयोगशालाओं में सिद्ध किया जा सकता है? यदि हाँ तो ठीक है, पर यदि नहीं तो हम उन्हें कैसे स्वीकार करें?

ऐसा प्रश्न उपस्थित होने पर अनायास ही हम इस ओर प्रेरित होने लगते हैं कि सचमुच धार्मिक–मान्यताओं की विज्ञान द्वारा पुष्टि करबाए जाने के प्रयास किये जाने चाहिए। हम तत्क्षण सक्रिय भी होने लगते हैं और तुरन्त ही कुछ ऐसे प्रमाण भी प्रस्तुत करने लगते हैं कि देखो! धर्म कहता है कि पानी में अनंत जीव होते हैं, इसलिए पानी छानकर पीना चाहिए और आज वैज्ञानिक परीक्षणों ने भी साबित कर दिया है कि यह बात सही है। ऐसा कहकर हम इसतरह चारों ओर देखते हैं कि मानो हमने जग जीत लिया हो। पर तभी सामने वाला कहता है कि ठीक है, इसीलिए तो हमने यह बात स्वीकार कर ली है, बस! इसी तरह अन्य सभी बातें भी आप विज्ञान के द्वारा साबित कर दीजिए, हम स्वीकार कर लेंगे, और एक बार फिर हम बगलें झांकने लगते हैं।

यहाँ हमसे दो गलतियाँ हुई हैं।

पहली तो यह कि हमने जो पानी में पाए जाने वाले जीवों की बात की, वह व उस जैसी ही अन्य बातें न तो धर्म हैं और न धर्म के सिद्धान्त, वह तो उस आचरण की बात है, जो धार्मिक लोगों में पाया जाता है। इन बातों को धर्म मानकर, धर्म से जोड़कर, इनके आधार पर धर्म के संबंध में कोई भी धारणा बनाना उचित नहीं है।

धर्म तो वस्तु के उस स्वभाव का, उन दार्शनिक मान्यताओं का नाम है, जिसकी विस्तृत व्याख्या आचार्यों ने धार्मिक ग्रन्थों में की है।

अत: जब–जब हम धर्म की बात करें, तब–तब हमें उन दार्शनिक मान्यताओं की बात करना चाहिए, न कि बाहरी आचरण–व्यवहार या इतिहास–भूगोल संबंधी बातों की।

दूसरी बात यह है कि **धार्मिक मान्यताओं को कन्फर्म करने या रिजेक्ट करने का आधार भौतिक विज्ञान को स्वीकार करना ही बड़ी भारी भूल है।** आखिर आधुनिक भौतिक विज्ञान होता कौन है धार्मिक एवं दार्शनिक मान्यताओं की परीक्षा करनेवाला? भौतिक विज्ञान की सीमा मात्र पौद्गलिक पदार्थों के परीक्षण तक ही तो है।

धर्म के बारे में टिप्पणी करने का अधिकार विज्ञान को देकर हम बन्दर के हाथ में तलवार सौंपने जैसा अविवेक–पूर्ण कार्य कर बैठते हैं।

आखिर हमारे जीवन–मरण का निर्णय हम किसी अक्षम–अपात्र के हाथ कैसे सौंप सकते हैं? धर्म हमारा जीवन है, हमारा स्वभाव है, उसे हम यूं ही कैसे दांव पर लगा सकते हैं?

क्या हमारा यह कृत्य, हमारा घोर अविवेक नहीं है?

इससे तो ऐसा लगता है मानो आत्मा व आत्मा की व्याख्या करनेवाला यह धर्म हमारा कुछ है ही नहीं, हमारा इससे कोई संबंध या सरोकार ही नहीं।

जिसप्रकार हम किसी लावारिस बच्चे को अनाथालय में छोड़ आते हैं उसीप्रकार अपने इस धर्म को विज्ञान के हवाले कर हम छुट्टी पा लेना चाहते हैं। अन्यथा क्या कोई अपने बच्चे को यूं ही किसी के हवाले कर सकता है?

लोग कहते हैं कि आज का युग विज्ञान का युग है, और इस तथ्य

से कोई इंकार भी नहीं कर सकता है। यदि इसी बात को मैं अपने दृष्टिकोण से प्रस्तुत करूँ तो कहना चाहूँगा कि आज का युग विज्ञान नामक महामारी से संक्रमित है।

दोष विज्ञान का नहीं, विज्ञान तो अपनी जगह है और जो है सो है। दोष विज्ञान के प्रति हमारे अपने दृष्टिकोण में है। वे हम हैं जो अपनी ज्ञान, संस्कार एवं संस्कृति की समृद्ध विरासत को तिलांजलि देकर इस भौतिक–विज्ञान की गोद में जा बैठे हैं, बिना सोचे–समझे, बिना विचार किये।

आज हम इस भौतिक–विज्ञान से इतने आक्रान्त हो गए हैं कि वही हमारे लिए सबकुछ हो गया है और कोई कुछ भी न रहा। उस पर तुर्रा यह है कि हम कुछ और तो सुनना–जानना ही नहीं चाहते, पर विज्ञान को भी जानते समझते कहां हैं, बस यूं ही उसके कायल हुए जा रहे हैं, उसके चमत्कारों के बोझ तले दबे जा रहे हैं।

मैं पूछता हूँ कि क्या है विज्ञान एवं विज्ञान के चमत्कार?

आखिर चमत्कार कहते किसे हैं? **चमत्कृत होना मात्र अपने अज्ञान की स्वीकृति है और कुछ भी नहीं।**

हम जो नहीं जानते, वह होता है तो हमें लगता है कि चमत्कार हो गया।

वह जो हुआ है, जिससे हम चमत्कृत हैं, क्या वह होने योग्य नहीं था, क्या वह हो नहीं सकता था?

यदि हो नहीं सकता था, तो हो कैसे गया?

यदि हो ही गया है तो यह कहना कैसे सही है कि ऐसा हो नहीं सकता? यह तो हमारा ही अज्ञान था जो कहता था कि ऐसा हो ही नहीं सकता, इसलिए हो जाने पर हम चमत्कृत होने लगते हैं। **इसीलिए**

मैं कहता हूँ कि चमत्कृत होना मात्र अपने अज्ञान की स्वीकृति है और कुछ भी नहीं।

जो होता है, उस रूप परिणमित होना वस्तु का स्वभाव है इसलिए वह होता है। यदि वह वस्तुस्वभाव नहीं होता तो वह हो ही नहीं सकता था। यदि वस्तु का स्वभाव है तो फिर चमत्कार कैसा?

इसलिए मैं कहता हूँ कि विज्ञान से चमत्कृत होने की, उससे आक्रान्त होने की कोई आवश्यकता नहीं है और न ही उसकी उपेक्षा करने, उसे भुला देने की आवश्यकता है। आवश्यकता है उसे सही परिप्रेक्ष्य में समझने की।

एक ओर हम विज्ञान से अभिभूत हैं और दूसरी ओर धर्म के प्रति हमारा दृष्टिकोण नकारात्मक है। नकारात्मक से मेरा तात्पर्य सिर्फ यह नहीं है कि हमारा मंतव्य धर्म से विपरीत है, बल्कि धर्म हमारी दृष्टि में उपेक्षित है, हमारे पास धर्म के बारे में सोचने का वक्त ही नहीं है। धर्म क्या है, क्या कहता है, उसका हमारे जीवन में क्या स्थान है और क्या स्थान होना चाहिए; इस सबके बारे में हमारा कोई सोच ही नहीं है।

धर्म हमारे जीवन का एक अंग है या आभूषण, हमें इसका निर्णय करना होगा।

क्या फर्क है अंग और आभूषण में? अंग वह होता है जिसे अपने से पृथक् नहीं किया जा सकता है और आभूषण वह है जिसे हम धारण करें या न करें यह हम पर निर्भर करता है।

एक बात और भी है कि शरीर के अंग हमारे लिए उपयोगी होते हैं और आभूषण मात्र दिखावटी।

शरीर के अंग शरीर पर भार नहीं होते पर आभूषण शरीर पर भार होते हैं। आभूषण बदले जा सकते हैं, पर सामान्यत: अंग नहीं।

आभूषणों के लिए कीमत चुकानी पड़ती है, अंगों के लिए नहीं।

आभूषणों को त्यागा जा सकता है, अंगों को नहीं। या यूं कहिये कि हम चाहें तो आभूषण धारण करें, न चाहें तो न करें; पर अंगों के बारे में ऐसा नहीं है। धर्म हमारे लिए आभूषणों की भांति दिखावटी, बोझिल व अनुपयोगी बाहरी वस्तु नहीं, वरन् धर्म जीवन का अंग है, धर्म ही जीवन है।

वस्तु का स्वभाव धर्म है व उस वस्तुस्वभाव का अध्ययन करने वाले, उसकी व्याख्या करने वाले ज्ञान–विज्ञान का नाम है वीतराग–विज्ञान। इसप्रकार धर्म व धर्म की व्याख्या करने वाला विज्ञान, वीतराग–विज्ञान भी भौतिक–विज्ञान, रसायन–विज्ञान आदि की ही तरह विज्ञान की अनेकों विधाओं में से एक विधा है और इसका अध्ययन करने वाले साधक हैं वैज्ञानिक, अध्यात्मविज्ञानी, और इनकी शोध–खोज का विषय है आत्मा अर्थात् मैं स्वयं। इसीलिए यह वीतराग–विज्ञान हमारे लिए अन्य सभी विज्ञानों से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

जिसप्रकार कोर्ट में कोई केस चलता है तो प्रतिवादी द्वारा सर्वप्रथम उस केस को सुनने के कोर्ट के अधिकार को चुनौती दी जाती है।

आज मैं भौतिक–विज्ञान की तथाकथित अदालत को यह चुनौती देता हूँ कि धार्मिक, दार्शनिक, आध्यात्मिक मान्यताओं के बारे में विचार करना व उसको सही या गलत करार देना उसके अधिकार क्षेत्र में नहीं है।

मैं यहाँ अपनी इस चुनौती के समर्थन में कुछ तर्क प्रस्तुत करता हूँ–

अरे भाई! बड़ी साधारण सी बात है कि जगत में दो तरह के द्रव्य पाये जाते हैं – मूर्तीक – जिन्हें देखा, छुआ, चखा व सूंघा जा सकता है व अमूर्तीक – जैसे आत्मा, जिसे न तो देखा जा सकता है और न ही सूंघा जा सकता है।

इनमें से भौतिक या आधुनिक विज्ञान ने मूलत: उन रूपी (मूर्तीक) पदार्थों को अपने अन्वेषण का विषय बनाया है जिसे पुद्गल कहते हैं, व इस क्षेत्र में विज्ञान ने असाधारण विशेषज्ञता हासिल की है और इस कार्य के लिए वह अभिनन्दनीय है; **परन्तु उस भौतिक–विज्ञान की शोध–खोज का विषय यह आत्मा–परमात्मा मूलत: कभी नहीं रहा और न ही इस विज्ञान ने इस क्षेत्र में कोई विशेष उपलब्धि ही हासिल की है। आत्मा व परमात्मा धर्म व दर्शन के, वीतराग–विज्ञान के विषय रहे हैं।**

उक्त तथ्य पर गौर करने पर क्या हमें स्वयं ही अपने इस अविवेक पर हंसी नहीं आयेगी कि हम अपनी आत्मा को उस विज्ञान की दया–मेहरबानी पर छोड़ देना चाहते हैं जो 'आत्मा–परमात्मा' के विषय में एक अबोध बालक से अधिक कोई हैसियत नहीं रखता है।

आंख का कोई डॉक्टर आंख के बारे में चाहे कितनी ही बड़ी हस्ती (Authority) क्यों न हो, हृदय–रोग के बारे में उसकी राय क्या महत्त्व रखती है? क्या हम मात्र इसलिए उससे अपने हृदय की बीमारी का इलाज भी करबाने को तैयार हो जायेंगे; क्योंकि वह विश्व में आंख का सबसे बड़ा डॉक्टर है?

तब फिर हम आत्मा के बारे में ऐसा कैसे कर सकते हैं?

इसप्रकार मैं कहता हूँ कि आधुनिक भौतिक–विज्ञान को कोई अधिकार नहीं कि वह आत्मा–परमात्मा पर अनुसंघान करने वाले धर्म, वीतराग–विज्ञान के बारे में कोई टिप्पणी करे।

मैं आपसे एक साधारण सा सवाल पूछता हूँ कि आप उस व्यक्ति की कितनी इज्जत करेंगे, उसपर कितना भरोसा करेंगे जो कभी कुछ कहे व कभी कुछ; वह भी अपने ही पूर्वापर (आगे–पीछे के) कथन से सर्वथा विपरीत; जो अपनी बातों से बार–बार फिर जावे, बदल जावे?

बिल्कुल भी नहीं न? तब फिर क्यों विज्ञान पर फिदा हुए जा रहे हैं? वह भी तो ऐसा ही है। कभी कुछ कहता है, कभी कुछ। आज कुछ और कहता है, कल कुछ और। अरे! आज ही, एक ही दिन एक वैज्ञानिक कुछ कहता है, दूसरा कुछ और।

आज सारा जमाना विज्ञान के लिए समर्पित है, विज्ञान के पीछे पागल हुआ जा रहा है। सरकारें विज्ञान की शोध-खोज के पीछे अरबों-खरबों रुपया खर्च करती हैं।

समस्त मानव-समाज का सबसे अधिक शिक्षित व बुद्धिमान वर्ग विज्ञान के अध्ययन में जुट जाता है व अन्य सभी उनके सहयोगी बन जाते हैं। वह अत्यन्त मेधावी व्यक्ति अपने सारे जीवन की साधना व तपस्या, सम्पूर्ण समर्पण व अनन्त धनराशि खर्च करने के बाद एक निष्कर्ष पर पहुंचकर घोषणा करता है कि अब तक हम जो मानते आये हैं वह सही नहीं था, सत्य तो यह है जो मैं आज बता रहा हूँ।

और हम वाह-वाह करने लगते हैं, उसके कायल हो जाते हैं।

अगले ही दिन कोई अन्य वैज्ञानिक फिर घोषणा करता है कि सत्य तो वह भी नहीं था जो कल बताया गया था। वह तो गलत साबित हो गया है। आज का सत्य तो यह है, और हम एक बार फिर अभिभूत हो जाते हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि **इस बात की भी क्या गारंटी है कि आज जो कहा जा रहा है, वह भी अन्तिम सत्य है।**

हर बार यही तो कहा गया था, पर हर बार का वह अन्तिम सत्य कुछ काल भी तो न टिक सका। अब भी कौन कह सकता है कि आज का यह कथित अन्तिम सत्य इसी विज्ञान के द्वारा ही कल फिर गलत साबित नहीं कर दिया जायेगा, और हम हैं कि ऐसे इस विज्ञान के भरोसे अपने इस आत्मा के बजूद (Existance) को ही दांव पर लगा देना चाहते हैं।

अरे विज्ञान भी किसी एक व्यक्ति या एक मान्यता या एक विधा का नाम नहीं है। इस जगत में अनेकों वैज्ञानिक हैं व विज्ञान की अनेकों विधायें (Genre) हैं।

प्रत्येक विधा के ज्ञाता अलग–अलग लोग हैं व वे अपने–अपने विषय के विशेषज्ञ होने के बावजूद अन्य विषय के बारे में शून्य होते हैं। एक विधा के वैज्ञानिक दूसरी विधा के वैज्ञानिकों के निष्कर्षों से सहमत हों यह भी जरूरी नहीं। उनके बीच भी कई गहरे मतभेद पला करते हैं।

अरे! एक ही विधा के वैज्ञानिकों के बीच भी एक ही विषय पर अनेकों राय हुआ करती हैं, तब वे प्रामाणिक कैसे हो सकते हैं?

ऐसी स्थिति में हम अपने आत्मा व अपने धर्म को उन अज्ञानियों की चौखट पर ठोकरें खाने के लिए छोड़ दें, यह कैसा अविवेक है?

एक बात और –

जगत में हम साधारण से साधारण मामले में भी न्याय पाने के लिये किसी के पास जाते हैं तो हम सुनिश्चित कर लेना चाहते हैं कि –

1. न्यायाधीश बनने वाला व्यक्ति बुद्धि से इतना सक्षम हो कि जो सही–गलत का फैसला कर सके।

2. न्यायाधीश विचाराधीन विषय का विद्वान हो, ताकि सत्य व असत्य का निर्णय कर सके।

3. न्यायाधीश किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त न हो।

4. न्यायाधीश का हित–अहित संबद्ध मामले से जुड़ा हुआ न हो।

5. न्यायाधीश संबद्ध मामले से भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ न हो।

6. किसी भय या लोभ के प्रभाव से न्यायाधीश को अपने न्याय मार्ग से विचलित न किया जा सके।

7. न्यायाधीश चरित्रवान व नीतिवान हो, जिसे किसी भी प्रकार से न्याय के मार्ग से विचलित न किया जा सके।

अपनी दार्शनिक मान्यताओं के बारे में निर्णय करवाने के लिए विज्ञान की शरण में जाने से पहले क्या यह सुनिश्चित कर लेना आवश्यक नहीं कि क्या आधुनिक, भौतिक-विज्ञान व वैज्ञानिक उक्त कसौटियों पर खरे उतरते हैं?

* आज विज्ञान का अध्ययन या शोध-खोज कोई स्वयं के सुख के लिए (स्वान्त:सुखाय) या परोपकार के लिए किया गया कार्य नहीं है, वरन् यह व्यक्तियों व सरकारों द्वारा शुद्ध आर्थिक व राजनैतिक फायदों के लिए अध्ययन है और इसलिए विज्ञान की शोध-खोज के नाम पर जो तथ्य हमारे सामने आते हैं; वे सदा ही शुद्ध (सत्य) नहीं, रंजित हुआ करते हैं।

* वे तथ्य शोधकर्ता व्यक्तियों व देशों के आर्थिक व राजनैतिक फायदे-नुकसान के अनुसार तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत किये जाते हैं; क्योंकि वे शोध-खोज अभियान किसी कम्पनी या सरकार के खर्च पर, उनके हित के लिए चलाये जाते हैं। शोधकर्ता उन कम्पनियों व सरकारों के आर्थिक व राजनैतिक दबावों में रहकर कार्य करते हैं।

* यूं भी वैज्ञानिक लोग कोई सन्त नहीं हैं, वे अपने-पराये या हानि-लाभ की भावना से परे नहीं हैं; अत: हम उनकी बातों में आकर अपनी 'आत्मा' को तो दांव पर नहीं लगा सकते हैं न?

* यूं भी बड़े-बड़े वैज्ञानिकों या अन्य क्षेत्रों के विशेषज्ञों को, जो अपनी-अपनी विद्या में अत्यन्त आधुनिक सोच रखते हैं व प्रगतिशील होते हैं, धार्मिक या आस्था संबंधी अन्य मामलों में पुरातन मान्यताओं की चौखट पर ही माथा टेकते देखा जा सकता है। वे अपने तथाकथित

विज्ञान के अलावा अन्य सभी मामलों में पुरातनपंथी ही रहते हैं। ऐसे में किसी का क्या भरोसा कि वह विज्ञान के नाम पर अपनी स्वयं की धार्मिक निष्ठा का ही प्रसार करने का यत्न नहीं कर रहा है।

* एक बहुत बड़ा व महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि वैज्ञानिक शोध-खोज में लगे लोग सन्त-महात्मा नहीं हुआ करते, अधिकतर वे सभी लोग सभी प्रकार की मानव-सुलभ कमजोरियों के दास व शिकार होते हैं। सामान्यतया उनके जीवन में खान-पान व चरित्र-आचरण संबंधी पवित्रता का दर्शन दुर्लभ ही होते है तथा वे भय-लोभ, मान-क्रोध, छल-कपट, मिथ्यावादिता आदि कमजोरियों के शिकार होते हैं।

* जिनका भोजन ऐसा हो, जिसमें अत्यन्त क्रूरता निहित हो (जो मांसाहारी हों) या जो ऐसे व्यसनों, जैसे कि - शराब पीना या अन्य नशा करना, वेश्या-गमन करना, परस्त्री-रमण करना, जुआ खेलना आदि में गहराई से डूबे हुए हों; ऐसे लोग तो जगत के साधारण से साधारण निर्णय भी ठीक ढंग से करने के लायक नहीं रह जाते, जगत में भी विश्वसनीय नहीं माने जाते हैं। नशे में विवेक रह ही कहाँ पाता है? अन्य व्यसन भी अत्यन्त अविवेक की ओर ही संकेत करते हैं।

ऐसी वृत्तियों वाले, हीन गतिविधियों में लिप्त व्यक्ति परमपवित्र आत्मा के बारे में; अतिसूक्ष्म, अदृश्य, आत्मा के बारे में क्या शोध-खोज कर सकते हैं?

* यह तो स्पष्ट ही है कि वैज्ञानिक लोगों का अध्ययन विज्ञान की अपनी विधाओं के बारे में कितना भी गहरा क्यों न हो, दार्शनिक मामलों में वे बालकवत् ही हैं।

* दरअसल यह भी हमारा भ्रम ही है कि दार्शनिक व आध्यात्मिक (धार्मिक) मान्यताओं को विज्ञान मान्यता नहीं देता है या ये मान्यतायें

विज्ञान की कसौटी पर खरी नहीं उतरती हैं, सच्चाई तो यह है कि विज्ञान ने इन्हें कभी कसौटी पर कसने का प्रयास ही नहीं किया है।

* विज्ञान आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार करता है या नहीं, पुनर्जन्म को मानता है या नहीं, इस ऊहापोह में उलझे हुए लोगों का ध्यान मैं इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि **विज्ञान आज तक आत्मा के अस्तित्व को नकार नहीं सका है और न ही इस संबंध में अपने कोई ठोस विचार ही प्रस्तुत कर सका है। इसका तात्पर्य यह है कि विज्ञान आत्मा के संबंध में अज्ञानी है और किसी अज्ञानी के विचारों का क्या महत्त्व है?**

* पुद्गल अति स्थूल है व आत्मा अति सूक्ष्म। सभी जानते हैं कि वैज्ञानिक शोध-खोज के लिए अत्यन्त सूक्ष्म व एक्यूरेट, अति संवेदनशील उपकरणों की आवश्यकता होती है, उनके बिना सही निरीक्षण व गणनायें नहीं की जा सकती हैं व सही निष्कर्षों पर नहीं पहुँचा जा सकता है।

विज्ञान के विषयों में आगे की शोध-खोज प्रारम्भ करने से पूर्व वैज्ञानिक लोग स्वयं अबतक की गई शोध-खोज का बड़ी गहराई से विधिवत् अध्ययन करते हैं, तत्संबंधी प्रचलित विभिन्न मान्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं, विभिन्न प्रयोगों के द्वारा उन्हें स्वयं प्रमाणित करते हैं और इस प्रक्रिया में सामान्यतया उनका आधे से अधिक जीवन व्यतीत हो जाता है, तब वे अपने-आपको इस स्थिति में पाते हैं कि आगे की शोध प्रारम्भ करें।

उसीप्रकार आत्मा भी शोध-खोज का विषय है, आत्मा की शोध-खोज के लिए भी एक सतर्क, समर्पित, अत्यन्त सरल, क्रोध, मान, माया, लोभ, भय व अन्य सामान्य मानव-सुलभ कमजोरियों से रहित एक निर्भार, पवित्र, सूक्ष्मान्वेषी साधक-आत्मा की आवश्यकता है जो कि गहराइयों में जाकर आत्मा का अनुभव कर सके।

ऐसे ही अनेकों अन्वेषकों ने भूतकाल में आत्मा की शोध-खोज की है और आज भी कर रहे हैं; पर हम उन्हें वैज्ञानिक मानने को ही तैयार नहीं। ये स्वयं भी अपने आप को वैज्ञानिक नहीं सन्त या ऋषी कहते हैं। जगत में भी तो पृथक-पृथक क्षेत्र में पृथक-पृथक नाम पाये जाते हैं; यथा - आयुर्वेद के चिकित्सक वैद्य कहलाते हैं; एलोपैथ के चिकित्सक डॉक्टर और युनानी के चिकित्सक हकीम।

* आज के इन वैज्ञानिकों ने आत्मा व धर्म से संबंधित सभी प्रचलित विचारधाराओं का गइराई से अध्ययन व शोध की ही नहीं है, तब वे किसप्रकार इस विषय पर अपने विचार प्रकट करने के भी अधिकारी हो सकते हैं।

* अरे भाई! हर विषय की शोध-खोज की विधि, उपकरण व स्थल अलग-अलग हुआ करते हैं। भौतिक-विज्ञान, जीव-विज्ञान व रसायन शास्त्र का अध्ययन तत्संबंधी प्रयोगशालाओं में यथोचित उपकरणों की सहायता से किया जाता है पर मनोविज्ञान का अध्ययन उसी विधि से उन्हीं प्रयोगशालाओं में नहीं हो सकता।

मानवजीवन ही इसकी प्रयोगशाला है और वह यत्र-तत्र-सर्वत्र उपलब्ध है। उनके अध्ययन की विधि भिन्न है, योग्यता भिन्न है। क्या एक भौतिक या रसायन-विज्ञानी या एक गणितज्ञ मनोविज्ञान का अध्ययन करके सही निष्कर्ष निकाल सकता है? कभी नहीं।

गणितज्ञ एक और एक = दो की बात पकड़कर बैठ जायेगा, पर मनो-वैज्ञानिक जानता है कि किसप्रकार एक और एक दो ही नहीं, बल्कि ग्यारह भी होते हैं। एक और एक मिलकर उसमें निहित ग्यारह की शक्ति को जिसप्रकार गणितज्ञ नहीं पहचान सकता; उसीप्रकार अदृश्य अत्यन्त सूक्ष्म आत्मा की महान, अनन्त-शक्ति को आज का

यह भौतिकवादी–विज्ञान नहीं पहचान सकता। अत: आत्मा की खोज के लिए इस भौतिक–विज्ञान की ओर ताकना व्यर्थ है।

✻ अरे! न्याय का विज्ञान कहेगा कि खून की सजा खून, मौत की सजा मौत! पर मातृत्व और मानवता का मनोविज्ञान इसे कभी स्वीकार नहीं कर सकता। अपनी ही सन्तान की शिकार बनी माता का मनोविज्ञान अपने कातिल बेटे को सिर्फ आशीर्वाद ही दे सकता है, अभिशाप नहीं; मृत्युदण्ड नहीं।

यह कोई आदर्श या कोरी कल्पना नहीं मातृत्व–मनोविज्ञान का यथार्थ है। इस सत्य को वह आंखों पर काली पट्टी बांधे न्याय का विज्ञान भला क्या समझेगा?

कहने का तात्पर्य यह है कि सब विषय अपने–आप में भिन्न–भिन्न, अपनी–अपनी विशेषतायें लिए हुए हैं व एक विषय का दूसरे के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप उचित नहीं है। इसलिए उचित यही है कि हम विज्ञान को विज्ञान का काम करने दें व धर्मात्माओं को धर्म का कार्य करने दें, दोनों को मिलायें नहीं।

✻ एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमारे वैज्ञानिक सर्वज्ञ नहीं, अल्पज्ञ हैं; वे सबकुछ एक साथ व सबकुछ सच्चा नहीं जानते; वे सम्पूर्ण सत्य के मात्र एक पक्ष के ही विशेषज्ञ होते हैं, ऐसी स्थिति में उनकी दृष्टि से सत्य के अन्य अनेकों पक्ष ओझल ही रह जाते हैं, तब वे एक वस्तु की सम्पूर्ण व सही व्याख्या किस तरह कर सकते हैं? उनकी अपनी सीमायें हैं व उनसे इस तरह की अपेक्षा रखना हमारा ही अविवेक है।

भौतिक विज्ञान सम्पूर्णत: विकसित ज्ञान नहीं है, वह अभी तक वृद्धिंगत शिशु है व उसके कोमल–कमजोर कन्धों पर आत्मा और

परमात्मा पर टिप्पणी करने का इतना बड़ा बोझ डाल देना हमारी ओर से विज्ञान पर ज्यादती ही कही जावेगी।

* मानवता के नाते तो वैज्ञानिक भी साधारण मनुष्य ही हैं, वे भी हीनता या उच्चता अथवा भय और प्रलोभन की भावना से ग्रस्त होते हैं, हो सकते हैं; और ये भावनायें स्वयं उन्हें सत्य का साक्षात्कार नहीं होने देतीं, तब वे औरों का मार्गदर्शन कैसे करेंगे?

* हमारे वे सन्त, महात्मा व साधक; जिन्होंने आत्मसाधना के बल पर अपनी समस्त कमजोरियों पर विजय पाकर, वह सूक्ष्मता व शक्ति प्राप्त कर ली है जो आत्मा को जानने व पहचानने के लिए आवश्यक है; वस्तुत: वे ही आत्मा के विषय में आधिकारिक टिप्पणी करने के अधिकारी हैं व वे ही हमारे लिए अनुकरणीय भी हैं और उनके द्वारा अपनाई गई विधि आत्म-अन्वेषण की विधि है, यदि वैज्ञानिकों को आत्मान्वेषण करना हैं तो उन्हें भी यही सब करना होगा।

* यदि मैं कहूँ तो चौंक मत जाइयेगा, पर **यह यथार्थ है कि विज्ञान व वैज्ञानिकों का दृष्टिकोण एक संकुचित दृष्टिकोण है; क्योंकि विज्ञान की प्राथमिकतायें सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक नहीं हैं।** विज्ञान का लक्ष्य कुछ सीमित लोगों, एक सीमित वर्ग को लाभ पहुँचाना है, प्राणिमात्र को नहीं; इसलिए ये सार्वभौमिक नहीं है तथा यह विज्ञान व वैज्ञानिक, मानव की आज की, मात्र आज की समस्याओं में ही इस कदर उलझे हुए हैं कि या तो भविष्य के बारे में सोचने की उनके पास फुर्सत ही नहीं या फिर वे वर्तमान के लिए भविष्य के हितों को तिलांजलि दे देते हैं; इसलिए वे सार्वकालिक नहीं हैं। ऐसे ये वैज्ञानिक सार्वभौमिक व सार्वकालिक, निष्पक्ष वीतरागी धर्म के बारे में निर्णय करने के अधिकारी कैसे हो सकते हैं?

❋ उक्त कथन थोड़ी और स्पष्टता की अपेक्षा रखता है। मेरा कहने का आशय यह है कि विज्ञान की चिन्ता का विषय या विज्ञान की करुणा का विषय सृष्टि का प्राणिमात्र (प्रत्येक प्राणी) नहीं है। उनकी सोच का विषय मात्र मानव–समाज है। विज्ञान के अध्ययन व शोध–खोज का लक्ष्य मात्र मानव के लिए सुविधायें जुटाना है, अन्य प्राणियों की कीमत पर भी, अन्य प्राणियों को नुकसान पहुँचा कर भी। अन्य प्राणी तो उनके लिए भोग्य हैं और उनके अनुसार मानव की साधारण से साधारण सी सुविधा के लिए भी अन्य किसी भी प्राणी–समूह का कितना भी बड़ा बलिदान किया जा सकता है। जबकि आत्मा के अध्ययन में रत धर्म का कार्य क्षेत्र प्राणिमात्र है, प्राणिमात्र धर्म की करुणा का विषय है व धर्म प्राणिमात्र के हित की बात सोचता है, करता है।

कदाचित् विज्ञान प्राणियों या वनों के विनाश के प्रति चिन्तित भी दिखाई देता है तो वह प्राणियों या वृक्षों पर करुणा करके नहीं, वरन् पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ जाने के भय से करता है, इसमें भी उसका मानव का स्वार्थ ही प्रदर्शित होता है।

❋ इसीप्रकार विज्ञान मानव की आज की सुविधा के सामने भविष्य के हितों का बलिदान करने में नहीं हिचकता, आज सुविधा मिले तो उसके परिणामस्वरूप इस सृष्टि पर कल क्या बुरा प्रभाव पड़ेगा, इसकी चिन्ता किये बिना विज्ञान आगे बढ जाता है।

❋ वस्तुत: तो पूरा का पूरा मानव समाज भी कहाँ उनके चिन्तन का विषय है। अरे वे तो अपनी खोजों के बल पर अन्य मानव–समूहों का भी शोषण ही करना चाहते हैं, उन्हें अपना गुलाम बनाना चाहते हैं, उनसे अपने आर्थिक व राजनैतिक स्वार्थों की पूर्ति करना चाहते हैं।

उक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखकर ही मैं यह कहने का साहस कर सका हूँ कि विज्ञान का दृष्टिकोण संकुचित है।

※ एक और दृष्टि से भी विज्ञान का दृष्टिकोण संकुचित कहा जायेगा कि विज्ञान का लक्ष्य मात्र भौतिक साधन जुटाना है, भौतिक उपलब्धियाँ ही उसकी उपलब्धियाँ हैं। आध्यात्मिक उपलब्धियाँ उसका लक्ष्य नहीं हैं, उसका विषय नहीं हैं। अध्यात्म की ओर विज्ञान का ध्यान ही नहीं है। भौतिक सुख व उपलब्धियाँ मात्र सुखाभास हैं व तात्कालिक महत्व की वस्तुयें हैं, त्रैकालिक महत्व की वस्तु तो अध्यात्म व आध्यात्मिक उपलब्धियाँ हैं।

※ यदि धर्म किसी पूर्व-मान्यता का खण्डन करता है तो यह जानने व प्रमाणित करने के बाद करता है कि पूर्व प्रचलित विभिन्न मान्यतायें क्या-क्या हैं व उनका आधार क्या है?

धार्मिक-दार्शनिक आस्थाओं का खण्डन करने से पूर्व किस वैज्ञानिक ने जगत में प्रचलित तत्संबंधित विभिन्न दार्शनिक मान्यताओं का अध्ययन किया है? बिना जाने-समझे ही यह खण्डन कैसा?

※ यह भी स्पष्ट है कि अधिकतम वैज्ञानिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त हैं, भावनाओं द्वारा संचालित हैं व अपने हानि-लाभ को ध्यान में रखकर अत्यन्त दवाब में कार्य करते हैं।

※ यदि उनके जीवनक्रम पर दृष्टि डाली जाये तो हम पायेंगे कि उनका आचरण, व्यवहार, चरित्र व खान-पान संबंधी सात्विकतायें भी उस स्तर की नहीं हैं; जिनके रहते, उन्हें किसी आराध्य पद पर सुशोभित किया जा सके।

※ यूं भी वैज्ञानिक विधि यह है कि वे यदि किसी प्रचलित मान्यता का खण्डन करें तो अपने उस खण्डन को साबित करने के लिए ठोस सबूत दें व यदि वह सत्य नहीं तो यथार्थ क्या है, उसकी स्थापना

करें, पर न तो आजतक विज्ञान आत्मा के अस्तित्व को, उसकी अनादि-अनन्तता को व पुनर्जन्म को ठोस प्रमाणों के आधार पर नकार पाया है और न ही आत्मा के अस्तित्व व पुनर्जन्म जैसे तथ्यों की पुर्नव्याख्या दे पाया है; तब इस संबंध में विज्ञान का कोई भी कथन क्या महत्त्व रखता है?

* विज्ञान विषय से संबंधित किसी व्यक्ति के कोई भी अविचारित, गैर-जिम्मेदाराना कथन को वैज्ञानिक मान्यता नहीं कहा जा सकता। उक्त मान्यताओं का वैज्ञानिक ढंग से विधिवत् विवेचन किया जाना चाहिए, तब वह वैज्ञानिक मान्यता कहला सकती है।

* सबसे महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि दार्शनिक मान्यताओं की तो बात ही जाने दीजिये, वह तो विज्ञान का कार्यक्षेत्र ही नहीं है; परन्तु विज्ञान स्वयं अपने कार्यक्षेत्र में भी अभी शैशवावस्था में ही है, निरन्तर वृद्धिंगत है, निरन्तर प्रगति कर रहा है।

अभी विज्ञान अपने-आप में संपूर्ण नहीं है, आधा-अधूरा है; अभी तक उसने पुद्गल के क्षेत्र में भी मात्र कुछ ही प्रश्नों के उत्तर खोजे हैं, अभी तो अनेकों (अनन्त) सवालों के उत्तर उसे खोजने हैं।

ऐसे एक आधे-अधूरे व्यक्ति या संकाय के हाथों अपने-आपको, अपनी समृद्ध दार्शनिक-मान्यताओं को सौंप देना कितना विवेक सम्मत होगा? क्या यह बन्दर के हाथ में तलवार देकर अपनी गर्दन भी प्रस्तुत कर देने जैसा हास्यास्पद व अविवेक भरा कार्य नहीं है?

उक्त सभी दृष्टिकोणों से विचार करने पर हम पायेंगे कि हमारे लिए यही उचित है कि विज्ञान को उसका कार्य करने दें व हम अपने कार्य में लगे रहें। आत्मा-परमात्मा संबंधी अपनी धार्मिक व दार्शनिक मान्यताओं के समर्थन के लिए हमें आधुनिक विज्ञान की कोई आवश्यकता नहीं है।

वैसे भी क्या कोई पड़ौसी के घर के कुंए के भरोसे अपने घर के घड़े

फोड़ देता है या फोड़ देने चाहिए?

नहीं न?

❋ हर धार्मिक–मान्यता की पुष्टि के लिए विज्ञान का मुंह ताकनेवाले लोगों से मैं कुछ सामान्य सी बातें पूछना चाहता हूँ कि कल तक, जब तक विज्ञान ने वायुयान या मिसाइल नहीं बनाये थे या रेडियो व टेलीविजन का आविष्कार नहीं कर लिया था; तब क्या हम अपने पुराणों में वर्णित अग्निबाण या पुष्पक विमान पर भरोसा कर पाते थे? क्या उन्हें मात्र कपोल–कल्पित नहीं मान बैठे थे, या कि 'आकाशवाणी हुई' पर हम भरोसा कर पाते थे या संजय द्वारा महाभारत के युद्ध का आंखों देखा हाल भीष्म पितामह को घर बैठे सुनाने की बात की सत्यता की कल्पना भी कर सकते थे या पानी की एक–एक बूंद में अनन्त जीवराशि होती है, यह बात हमारे गले उतरती थी? नहीं न? पर क्या तब यह सत्य नहीं था? यह सब सत्य था यह आज विज्ञान ने साबित कर दिया है।

तब क्या उस समय हमारा इन बातों पर भरोसा न करना हमारा महा–अविवेक का कार्य नहीं था? क्या विज्ञान के कन्फर्म न कर पाने से सत्य बदल गया था? नहीं न?

यही बात आज लागू क्यों नहीं हो सकती। हो सकता है विज्ञान धर्म की जिन बातों को आज तक जान नहीं पाया है, कल जान जावे, कल कन्फर्म कर दे। पर तब हमारा क्या होगा? तब हम तो नहीं होंगे न........

अब आप ही कहिए कि विज्ञान के अज्ञान का, विज्ञान के आधे–अधूरेपन का अभिशाप हम क्यों भुगतें, उसके शिकार हम क्यों बनें? जबकि सन्तों की वाणी, और उनका ज्ञान पहले से ही हमारे पास है।

यहाँ कोई कह सकता है कि भाई! हम सुनी–पढ़ी बातों पर भरोसा नहीं कर सकते, हमें तो प्रयोगशाला में साबित करके दिखाइये! तब हम

आपकी, धर्म की, आत्मा-परमात्मा वाली बातें स्वीकार कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। पर भाई साहब! विज्ञान की बातें भी तो आपने मात्र सुनी या पढ़ी ही हैं, आपने कहाँ स्वयं उनका अनुभव किया है? कहाँ स्वयं प्रयोग किया है।

इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि धर्म की एक बात जो हमने सुनी है, वह 1000 वर्ष पहले कही गई थी या कि विज्ञान की जो बात हमने सुनी पढी है, वह 10-20 या 50-100 वर्ष पहले कही गई है?

हमारे लिए तो दोनों ही बातें सुनी-पढी हुई हैं, स्वयं अनुभूत तो नहीं हैं न? तब धर्म क्यों अविश्वसनीय हो गया व विज्ञान क्यों विश्वसनीय बन गया?

रही बात यह कि हमने देखा तो नहीं है, देखने की जरूरत भी नहीं समझी क्योंकि हमको अविश्वास भी नहीं हुआ; पर आवश्यकता पड़ने पर विज्ञान हमें अपनी बातें प्रयोगशाला में साबित करके दिखा तो सकता है न, इसका हमें भरोसा है।

धन्य हैं आप! आपको, शराबी, व्यसनी व स्वार्थी, अल्प-ज्ञानी, रागी-द्वेषी वैज्ञानिकों की बातों पर तो भरोसा है और सदाचारी, उच्च चरित्रवान, तपस्वी, निस्वार्थ, सर्वज्ञ, वीतरागी-व्यक्तित्वों, सन्त-महन्तों की सतर्क बातों पर भरोसा नहीं।

रही बात प्रयोगशाला में साबित करने की, तो हाँ! मैं कहता हूँ कि धार्मिक सिद्धान्त भी प्रयोगशाला में साबित किये जा सकते हैं।

अरे आत्मा की प्रयोगशालाओं में अनुभव करके ही उनकी व्याख्या की गई है। पर धर्म के प्रयोग के लिए कहाँ हैं आपके पास उस स्तर के प्रयास, उस स्तर का समर्पण, उस स्तर की ज्वलंत लालसा, उस स्तर की शिक्षा; जैसीकि विज्ञान के लिए है। अरे! विज्ञान की छोटी-मोटी उपलब्धियाँ, उनके पीछे किये गये विशाल समर्पण का

परिणाम है। उसकी तुलना में धर्म के लिए किया ही क्या है हमने?

यदि इसी स्तर के प्रयास समर्पण भाव से आत्मा के क्षेत्र में किये जावें तो परमात्मा के दर्शन हो ही जावेंगे, आत्मा के दर्शन हो ही जावेंगे, इसमें कोई संदेह नहीं। यही सब भूतकाल में अनन्त ऋषियों ने किया भी है, और हम सब आज भी कर सकते हैं; आवश्यकता है मात्र सम्यक् प्रयासों की।

फिर विज्ञान अपने विषय में कितना ही समृद्ध क्यों न हो; हमारे लिए, दार्शनिक मान्यताओं के लिए उसका क्या महत्त्व है? उसके भरोसे हम अपने समृद्ध दार्शनिक ज्ञान को कैसे तिलांजलि दे सकते हैं?

धर्म–दर्शन व दार्शनिक मान्यतायें समृद्ध व अपने–आप में परिपूर्ण हैं, जबकि विज्ञान अभी विकासशील अवस्था में है, वह सम्पूर्ण नहीं है। तब यदि विज्ञान चाहे तो अपनी मान्यताओं की पुष्टि के लिए धर्म व दर्शन की शरण में आ सकता है।

वैज्ञानिक क्या कहते हैं – यह जान लेने मात्र से कोई वैज्ञानिक नहीं बन जाता है, वैज्ञानिक बनने के लिए प्रयोगशाला में स्वयं परीक्षण करने पड़ते हैं। उसीप्रकार प्रयोगशाला में आत्मानुभव के परीक्षण करने होंगे॥

धर्म पराश्रित क्रिया नहीं, वरन् स्वपरीक्षित साधना है, धर्म की परीक्षा के लिए हमें किसी अन्य की शरण में जाने की आवश्यकता नहीं, वरन् सबकी शरण छोड़कर स्वयं अपने में सिमट जाने की आवश्यकता है। उसीप्रकार धर्म के, वीतराग–विज्ञान के वैज्ञानिक बनने के लिए हमें स्वयं अपनी आत्मा की प्रयोगशाला में आत्मानुभव के परीक्षण करने होंगे, ऐसा करने पर आत्मा–परमात्मा से संबंधित आचार्यों के कथनों की सत्यता हमारे समक्ष स्वयं ही स्पष्ट हो जायेगी और यही दृढ़ता भरी आस्था आत्महित के लिए कार्यकारी है। ●

आधुनिक विज्ञान की दासता से मुक्त

आत्मार्थियों के लिए सम्यक दृष्टिकोण और विधि

– परमात्म प्रकाश भारिल्ल

इस तथ्य पर गौर करना आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि **आखिर इस प्रश्न की उत्पत्ति कहाँ से हुई कि – "क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?"**

इसके दो उद्गम (स्रोत) संभव हैं –

1. वे लोग जो सच्चे आत्मार्थी हैं और आत्म–कल्याण जिनकी प्रथम प्राथमिकता है। ऐसे लोग भी अज्ञान वश, स्वाध्याय अथवा गुरु के उपदेश से प्राप्त ज्ञान के प्रमाणीकरण के लिए इस आशा में विज्ञान की शरण में पहुँच गए कि यदि आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक हमारे इस आत्म–कल्याणकारी जैन अध्यात्म को प्रमाणित करते हों तो हम नि:शंक और निर्द्वन्द होकर उस पथ पर आगे बढ़ जायें।

वे यह बात अच्छी तरह जानते हैं कि **तत्त्व निर्णय की दिशा में प्रथम कदम होता है, आगम के अभ्यास से और परंपरा गुरु के उपदेश से प्रयोजनभूत तत्त्वों, यथा – आत्मा–परमात्मा, देव–शास्त्र–गुरु और सात तत्त्वों के स्वरूप के संबंध में जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उसे अपने अनुभव से प्रमाणित करें।**

इस तरह यद्यपि **प्रमाणीकरण की यह प्रक्रिया अंतत: तो स्वयं के अनुभव से ही सम्पन्न होनी चाहिए** पर स्वयं अनुभव करने की स्थित में आएं उससे पहले, प्राप्त श्रुतज्ञान के विषय को दृढ़ता प्रदान करने के लिए उन्होंने महसूस किया कि आधुनिक वैज्ञानिक हमसे ज्यादा सक्षम हैं, तो क्यों ना प्रमाणीकरण का यह कार्य उनसे ही सम्पन्न करवा लिया जाए? यदि आधुनिक वैज्ञानिक उनकी पुष्टि कर देते हैं तो स्वयं अनुभव से उन्हें प्रमाणित करने के उनके प्रयासों को बल मिलेगा।

वस्तुत: उनकी उक्त सोच गलत है, क्योंकि आत्म–कल्याण के लिए तो श्रुतज्ञान के माध्यम से प्राप्त वस्तु–स्वरूप, आराधक को तर्क व युक्ति के आश्रय से एवं स्वयं अपने अनुभव से प्रमाणित करना होता है, इसमें तो स्वयं सर्वज्ञदेव का प्रमाणीकरण भी हमारे लिए कार्यकारी नहीं है। किसी अन्य से उसे प्रमाणित करवा लेना तो वैसा ही है (स्वाध्याय अथवा उपदेश से प्राप्त ज्ञान के समकक्ष) जैसे आपने जिनवाणी के अध्ययन से अथवा गुरु के उपदेश से ज्ञान प्राप्त किया है।

ऐसे लोग तो निश्चित ही "**क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है?**" जैसे लेख पढ़कर अथवा किसी विद्वान से ऐसी व्याख्या सुनकर आधुनिक विज्ञान की मानसिक दासता से मुक्त हो जाएंगे।

2. दूसरे प्रकार के लोग वे हैं जो व्यवसायिक तौर पर शोध–खोज करने वाले ही हैं, बस शोध–खोज करना ही जिनका पेशा या व्यसन है। तर्क–वितर्क और कुतर्क ही जिनका मनोरंजन है तथा उन्हें इस बात से कोई प्रयोजन नहीं होता है कि उनके निष्कर्ष अंतत: सकारात्मक रहे या नकारात्मक। उन्हें इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अंतत: ऊंट किस करवट बैठता है। ऐसे लोगों की कोई प्रतिबद्ध निष्ठा नहीं है। यदि भाषा अशिष्ट न मानी जाए तो भाव स्पष्ट करने के लिए मैं कह सकता हूँ कि ऐसे लोग वे छुट्टे सांड हैं जिनके ऊपर किसी का कोई नियंत्रण नहीं है। तीर चलाते समय उन्हें यह पता ही नहीं होता है कि निशाना कहाँ लगेगा, कहाँ वार करेगा। उन्हें तो बस करने से मतलब!

ऐसे लोग सदा ही धर्म को विज्ञान से भिड़ाने और विज्ञान को धर्म से उलझाने जैसा बुद्धि का व्यायाम जारी रखेंगे। वे यह निरर्थक कसरत कभी छोड़ेंगे ही नहीं। मैं महसूस करता हूँ कि हमें इस प्रकार के शुष्क बुद्धिजीवियों की परवाह छोड़कर उनसे विमुख हो जाना चाहिए। ऐसे प्रयत्नों से हमारे प्रयोजन की सिद्धि तो होगी नहीं, हम भटक जाएंगे, उलझ जाएंगे।

क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है लेख पढ़ने से पहले तक कदाचित यह तर्क उपयुक्त माना जा सकता था कि यदि आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक हमारे इस आत्म–कल्याणकारी जैन–अध्यात्म को प्रमाणित करते हों तो हम नि:शंक और निर्द्वन्द होकर उस पथ पर आगे बढ़ जायें।

आधुनिक विज्ञान के प्रति हमारी उक्त मानसिक गुलामी का कारण यह रहा कि – अब तक हम आत्मार्थी थे ही नहीं। अब तक तो हम देह और पौद्गलिक पदार्थों में ही उलझे हुए थे, उन्हीं में लिप्त थे और उन विषयों में पारंगत ये वैज्ञानिक हमें भगवान से दिखाई देते थे। यद्यपि विसंगतियाँ हमें उनमें तब भी दिखाई देती थीं, पर वे हमारे तत्कालीन सांसारिक प्रयोजनों की सिद्धी में आड़े नहीं आती थीं, इसलिए हम उन्हें नजरंदाज कर देते थे।

एक और बात उल्लेखनीय है कि **उन सांसारिक–पौद्गलिक विषयों में हम**

भी तो पारंगत हैं! इसलिए हम तब भी अपने–आपको पूरी तरह वैज्ञानिकों या अन्यों के हवाले नहीं कर देते थे, हम अपने विवेक को जाग्रत रखते थे व विभिन्न मत–विभिन्नताओं के बीच से अपने लिए अपने विवेक से एक मत का चुनाव कर लेते थे। अंतत: तो तब भी हमारा स्वविवेक ही काम आता रहा है।

आत्म–कल्याणकारी धार्मिक–आध्यात्मिक विषयों में ऐसा नहीं है। इन विषयों में हमारी स्वयं की गति अब तक नहीं रही। हमें इसका कोई अभ्यास नहीं, हमारी अपनी कोई राय नहीं। **इन विषयों में तो अब तक हमारे पास जो भी है सब उधारी का माल है। चाहे उसका श्रोत आगम और गुरु हों या कोई और।** अब तक हमने सिर्फ सुना है, उसे आत्मसात नहीं किया है। उसके बारे में कोई कार्यकारी (effective) निर्णय नहीं किया है, कोई अपनी राय नहीं बनाई है।

अब तक हम यह भी नहीं जानते हैं कि उनकी परीक्षा कैसे की जाए, परीक्षा की विधि क्या हो, साधन क्या हों? इसलिए हम इन विषयों में दुनियादारी के अन्य विषयों की तरह अपने जाग्रत विवेक का उपयोग ही नहीं कर पाए। बस इसलिए हम उन साधनहीन, भोले ग्रामीण लोगों की भांति अपने आध्यात्मिक विषयों के समाधान हेतु इन पुद्गल के वैज्ञानिकों का दरवाजा खटखटाने पहुंच गए।

गांवों में प्राय: अधिकतम लोग अनपढ़ हुआ करते थे, उन्हें किन्ही विशेषज्ञों की सेवायें भी उपलब्ध नहीं होती थीं कि वे उनसे राय ले लें। ऐसे लोगों की परामर्श (consultancy) संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए हर गांव–कस्बे में कुछ लाल–बुझक्कड़ टाइप के लोग हुआ करते थे। वे लोग किसी विषय में कुछ जानें–समझें या नहीं पर उनके पास सलाह–मशविरा करने आया कोई भी जिज्ञासु कभी निराश होकर खाली हाथ नहीं लौटता था। वे उसे कोई कैसी भी सलाह देकर संतुष्ट करके ही भेजते थे। **क्या आपको नहीं लगता कि आज का यह विज्ञान और ये वैज्ञानिक हमारे लिए ऐसे ही लाल–बुझक्कड़ बने बैठे हैं और हम उन भोले ग्रामीणों की तरह के जिज्ञासु?**

मेरा यह कथन आपको बुरा अवश्य लग रहा होगा कि मैं आपकी तुलना किन भोले–अज्ञानियों (गंवारों) के साथ कर रहा हूँ, **पर क्या हमारा यह व्यवहार उनके ही समतुल्य नहीं है?**

क्या आपको ऐसा नहीं लगता है कि ऐसा करके हम सर्राफ की दुकान

पर शराब लेने पहुँच गए हों?

क्या कोई अपने हार्ट का इलाज करवाने के लिए आँख के डॉक्टर के पास जाता है? तो हम क्यों अपने आत्मा-परमात्मा के बारे में निर्णय करवाने के लिए इन पुद्गल के वैज्ञानिकों के पास जाना चाहते हैं?

अब उक्त लेख के माध्यम से तर्क और युक्तियों द्वारा आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिकों के यथार्थ का उद्घाटन और उनकी परिस्थितियों, सीमाओं तथा उनके चरित्र का विश्लेषण करने के बाद; **यह निष्कर्ष सामने आने के बाद कि आधुनिक विज्ञान और वैज्ञानिक इस विषय में सक्षम नहीं हैं कि वे धर्म द्वारा प्रतिपादित उक्त आत्म-कल्याणकारी विषयों को प्रमाणित करें या अप्रमाणिक करार दें। अब भी यदि कोई उसी द्वन्द में उलझा हुआ है कि इस विषय में विज्ञान क्या कहता है, तो उसकी होनहार का विचार कर (कि उनकी होनहार ही खोटी है) धैर्य धारण करना ही योग्य है। उनके विषय में विचार करते हुए अपने उपयोग को और अधिक भ्रमाना किसी आत्मार्थी के लिए योग्य नहीं है।**

पात्रता का विचार करते समय, पूर्व में विज्ञान की ओर आशा भरी निगाहों से ताकने की प्रवृत्ति वाले जीवों के विषय में यह समझ (consideration) कि वे भोले भगवान मात्र शुष्क और उद्देश्यहीन शोधार्थी नहीं वरन सच्चे आत्मार्थी ही थे, भी सिर्फ उन्ही लोगों के प्रति व्यावहारिक है जो उक्त आधुनिक विज्ञान से विमुख होने के बाद अब भी कटिबद्ध होकर आत्मकल्याण हेतु तत्त्व-निर्णय के अन्य उपाय करते हुए यथार्थ के निर्णय की प्रक्रिया में जुटे हुए हैं। जो येन केन प्रकारेण **जैन आगम में वर्णित आत्मा-परमात्मा, देव-शास्त्र-गुरु और सात तत्त्वों के स्वरूप को प्रमाणित करके हेय तत्त्वों का त्याग कर, ज्ञेय तत्त्वों का ज्ञान कर उपादेय का आश्रय लेना चाहते हैं।**

सत्य के अन्वेषण की उनकी प्रक्रिया के अंतर्गत ही जो भूल से आधुनिक विज्ञान की शरण में जा पहुंचे थे और अब उक्त आधुनिक विज्ञान की स्थिति के बारे में यथार्थ का विश्लेषण जान एवं समझ लेने के बाद इस विषय में आधुनिक विज्ञान के प्रति जिनका मोह भंग हो चुका हो, उनके विषय में यह माना जा सकता है कि वे मात्र पंचायत में नहीं उलझे हैं, वे आत्म कल्याण के प्रति गंभीर हैं।

हम भी यदि आत्मार्थी हैं तो हमारे लिए यही दृष्टिकोण योग्य है। तथास्तु!

❑ ❑ ❑

लेखक की अन्य पुस्तक 'क्या मृत्यु अभिशाप है?' से –

❖ (मृत्यु की स्थिति में) हमें न मिलने का दुःख नहीं होता, हमें अफ़सोस होता है न मिल सकने का। यहाँ हमारी समस्या विरह नहीं है, यहाँ हमारी व्यथा मजबूरी है, हमारा असहायपना है। – पृष्ठ–5

❖ **(मृत्यु से डर क्यों?) मृत्यु के बाद का जीवन हमारी नजरों से ओझल रहता है। अरे! नजरों से क्या, कल्पना से भी ओझल रहता है। मृत्यु के बाद हमारे पास भविष्य की कोई परिकल्पना नहीं होती, और तो और, भविष्य है भी या नहीं, इसके बारे में भी हम सशंकित ही रहते हैं। – पृष्ठ–6**

❖ हम धर्म भीरु (धर्म से डरने वाले) हैं, धर्मात्मा नहीं। धर्म के पालक नहीं, धार्मिक नहीं। – पृष्ठ–8

❖ **जहाँ हमें वस्तु स्वरूप में परिवर्तन करने की तनिक सी गुंजाइश दिखाई देती है वहाँ हम अनंत संभावनाओं की तलाश करने लगते हैं। – पृष्ठ–11**

❖ मृत्यु के प्रति हमारी हिचक का एक बड़ा कारण है हमारे कामों का अधूरा रहना। यदि इस जीवन के प्रति हमारे सारे कर्तव्य पूरे हो गए हैं और अब कुछ करना शेष नहीं रह गया है तो मौत के प्रति हमारा भय, अनिक्षा, हिचक और मौत को टालने की हमारी वृत्ति मिट जाएगी। आखिर हम जैसे जिम्मेदार लोग अपने कर्तव्यों का निर्वाह किये बिना मरने की सोच भी कैसे सकते हैं? – पृष्ठ–30

❖ **अपनी कमजोरियों को छुपाने में हम इतने माहिर हैं कि उन्हें अच्छे–अच्छे नाम दे डालते हैं। – पृष्ठ–31**

❖ सचमुच तो मृत्यु के प्रति हमारे अंदर गहरा बैठा डर ही पुकार–पुकार कर कहता है कि मैं मृत्यु से नहीं डरता। – पृष्ठ–32

❖ **(जिन्हें मरने की फुर्सत नहीं) जिस दिन मौत आएगी तो वह आपकी फुर्सत का इंतजार नहीं करेगी कि आपको अभी मरने की फुर्सत है या नहीं। वह तो अपना काम पूरा कर ही लेगी, आपके काम चाहे पूरे हुए हों या नहीं। – पृष्ठ–32**

❖ इस प्रकार अपने–आपको झोंक कर हम संसार का विकास करते हैं व अपने लिए संसार का विस्तार करते हैं। – पृष्ठ–34

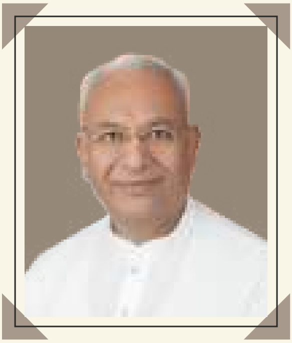

तार्किक शैली के आध्यात्मिक व्याख्याता परमात्मप्रकाश भारिल्ल को कठिनतम विषयवस्तु को अत्यंत सरलतापूर्वक पाठकों और श्रोताओं को हृदयंगम करा देने में महारत हासिल है, वे किसी भी विषय के उन पहलुओं को उजागर करते हैं, जिनकी ओर सामान्यत: किसी का ध्यान ही नहीं जाता।

प्राचीन दार्शनिक सन्दर्भों की आधुनिक शैली में तार्किक व्याख्या करके, उसे पाठकों व श्रोताओं से स्वीकृत करा लेना उनकी विशेषता है।

आप गहन चिंतक हैं और जैनधर्म तथा अध्यात्म के अतिरिक्त किसी भी नैतिक और सामाजिक विषय पर, उपयुक्त आदर्श जीवन शैली एवं जीवन के विभिन्न पहलुओं पर आपके युक्तियुक्त, तार्किक विचार जनसामान्य के लिए अत्यन्त उपादेय हैं।

कुशल वक्ता के अतिरिक्त आप एक **सिद्धहस्त लेखक, निबंधकार, कथाकार, दक्ष कवि, सफल प्रशिक्षक, शिक्षक एवं जैन पत्रकार हैं।**

पाक्षिक पत्र 'जैन पथप्रदर्शक' के आप सम्पादक हैं।

अपने रत्नव्यवसाय के सिलसिले में अनेकों विदेश यात्राएँ करने के अलावा **आप प्रवचनार्थ भी देश–विदेश की यात्राएँ करते रहते हैं।**

उसी माहौल में पले–बडे और अल्पवय से ही सामाजिक व आध्यात्मिक अभियानों में सक्रिय आप जैन अध्यात्म के प्रचार–प्रसार के क्षेत्र में आज विश्व के सर्वोपरि संस्थान **पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट व पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर के महामंत्री हैं।**

राष्ट्रीय स्तर के जैन **युवा संगठन अखिल भारतीय जैन युवा फेडरेशन के आप राष्ट्रीय महामंत्री हैं। डॉ. हुकमचंद भारिल्ल चेरिटेबल ट्रस्ट के महामंत्री** के अतिरिक्त आप देश के जैन विद्वानों के ८५ वर्ष पुराने संगठन **'अखिल भारतवर्षीय दि. जैन विद्वत परिषद ट्रस्ट के उपाध्यक्ष एवं आधुनिक जैन विद्वानों के संगठन स्नातक परिषद ट्रस्ट के अध्यक्ष भी हैं।**

तीर्थधाम मंगलायतन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं श्री महावीर स्वामी कुन्दकुन्द कहान दि. जैन मुमुक्षु मंडल ट्रस्ट बोरीवली, मुंबई के भी आप ट्रस्टी हैं।

पण्डित टोडरमल दि. जैन सिद्धांत महाविद्यालय, श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड एवं श्री वीतराग विज्ञान पाठशाला समिति भी आपके निर्देशन में कार्य करती हैं।

धर्म की व्याख्याओं की विज्ञान द्वारा पुष्टि किये जाने की दासता भरी वृत्ति से मुक्ति प्रदान करती प्रस्तुत कृति **'क्या विज्ञान धर्म की कसौटी हो सकता है ?'** के अतिरिक्त जीवन और मृत्यु के यथार्थ पर व्यवहारिक एवं युक्तियुक्त रूप से रोचक शैली में प्रकाश डालने वाली आपकी एक अन्य प्रकाशित रचना **'क्या मृत्यु अभिशाप है ?'** भी पाठकों द्वारा सराही गई है। सामान्यजन के जीवनक्रम की विवेचना करते हुए इस जीवन के लक्ष्य को परिभाषित करती हुई आपकी एक अन्य प्रकाशित रचना **'अंतर्द्वन्द'** भी पठनीय है।

जैन पथप्रदर्शक के सम्पादकीय के रूप में महत्वपूर्ण विषयों पर आपके लेख भी बड़े चाव से पढ़े जाते हैं।